श्री सीताजी का यज्ञशाला में प्रवेश

चौपाई :

*** सिय सोभा नहिं जाइ बखानी। जगदंबिका रूप गुन खानी॥ उपमा सकल मोहि लघु लागीं। प्राकृत नारि अंग अनुरागीं॥1॥

भावार्थ:

रूप और गुणों की खान जगज्जननी जानकीजी की शोभा का वर्णन नहीं हो सकता। उनके लिए मुझे (काव्य की) सब उपमाएँ तुच्छ लगती हैं, क्योंकि वे लौकिक स्त्रियों के अंगों से अनुराग रखने वाली हैं (अर्थात् वे जगत की स्त्रियों के अंगों को दी जाती हैं)। (काव्य की उपमाएँ सब त्रिगुणात्मक, मायिक जगत से ली गई हैं, उन्हें भगवान की स्वरूपा शक्ति श्री जानकीजी के अप्राकृत, चिन्मय अंगों के लिए प्रयुक्त करना उनका अपमान करना और अपने को उपहासास्पद बनाना है)॥1॥

*** सिय बरनिअ तेइ उपमा देई। कुकबि कहाइ अजसु को लेई॥ जौं पटतरिअ तीय सम सीया। जग असि जुबति कहाँ कमनीया॥2॥

भावार्थ:

सीताजी के वर्णन में उन्हीं उपमाओं को देकर कौन कुकवि कहलाए और अपयश का भागी बने (अर्थात सीताजी के लिए उन उपमाओं का प्रयोग करना सुकवि के पद से च्युत होना और अपकीर्ति मोल लेना है, कोई भी सुकवि ऐसी नादानी एवं अनुचित कार्य नहीं करेगा।) यदि किसी स्त्री के साथ सीताजी की तुलना की जाए तो जगत में ऐसी सुंदर युवती हैही कहाँ (जिसकी उपमा उन्हें दी जाए)॥2॥

*** गिरा मुखर तन अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी॥ बिष बारुनी बंधु प्रिय जेही। कहिअ रमासम किमि बैदेही॥3॥

भावार्थ:

(पृथ्वी की स्त्रियों की तो बात ही क्या, देवताओं की स्त्रियों को भी यदि देखा जाए तो हमारी अपेक्षा कहीं अधिक दिव्य और सुंदर हैं, तो उनमें) सरस्वती तो बहुत बोलने वाली हैं, पार्वती अंर्द्धांगिनी हैं (अर्थात अर्ध-नारीनटेश्वर के रूप में उनका आधा ही अंग स्त्री का है, शेष आधा अंग पुरुष-शिवजी का है), कामदेव की स्त्री रति पति को बिना शरीर का (अनंग) जानकर बहुत दुःखी रहती है और जिनके विष और मद्य-जैसे (समुद्र से उत्पन्न होने के नाते) प्रिय भाई हैं, उन लक्ष्मी के समान तो जानकीजी को कहा ही कैसे जाए॥3॥

*** जौं छबि सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छपु सोई॥ सोभा रजु मंदरु सिंगारू। मथै पानि पंकज निज मारू॥4॥

भावार्थ:

(जिन लक्ष्मीजी की बात ऊपर कही गई है, वे निकली थीं खारे समुद्र से, जिसको मथने के लिए भगवान ने अति कर्कश पीठ वाले कच्छप का रूप धारण किया, रस्सी बनाई गई महान विषधर वासुकि नाग की, मथानी का कार्य किया अतिशय कठोर मंदराचल पर्वत ने और उसे मथा सारे देवताओं और दैत्यों ने मिलकर। जिन लक्ष्मी को अतिशय शोभा की खान और अनुपम सुंदरी कहते हैं, उनको प्रकट करने में हेतु बने ये सब असुंदर एवं स्वाभाविकही कठोर उपकरण। ऐसे उपकरणों से प्रकट हुई लक्ष्मी श्री जानकीजी की समता कोकैसे पा सकती हैं। हाँ, (इसके विपरीत) यदि छबि रूपी अमृत का समुद्र हो, परम रूपमय कच्छप हो, शोभा रूप रस्सी हो, श्रृंगार (रस) पर्वत हो और (उस छबि के समुद्र को) स्वयं कामदेव अपने ही करकमल से मथे,॥4॥

दोहा :

*** एहि बिधि उपजै लच्छि जब सुंदरता सुख मूल। तदपि सकोच समेत कबि कहहिं सीय समतूल॥247॥

भावार्थ:

इस प्रकार (का संयोग होने से) जब सुंदरता और सुख की मूल लक्ष्मी उत्पन्न हो, तो भी कवि लोग उसे (बहुत) संकोच के साथ सीताजी के समान कहेंगे॥247॥< (जिस सुंदरता के समुद्र को कामदेव मथेगा वह सुंदरता भी प्राकृत, लौकिक सुंदरता ही होगी, क्योंकि कामदेव स्वयं भी त्रिगुणमयी प्रकृति का ही विकार है। अतः उस सुंदरता को मथकर प्रकट की हुई लक्ष्मी भी उपर्युक्त लक्ष्मी की अपेक्षा कहीं अधिक सुंदर और दिव्य होने पर भी होगी प्राकृत ही, अतः उसके साथ भी जानकीजी की तुलना करना कवि के लिए बड़े संकोच की बात होगी। जिस सुंदरता से जानकीजी का दिव्यातिदिव्य परम दिव्य विग्रह बना है, वह सुंदरता उपर्युक्त सुंदरता से भिन्न अप्राकृत है- वस्तुतः लक्ष्मीजी का अप्राकृत रूप भी यही है। वह कामदेव के मथने में नहीं आ सकती और वह जानकीजी का स्वरूप ही है, अतः उनसे भिन्न नहीं और उपमा दी जाती है भिन्न वस्तु के साथ। इसके अतिरिक्त जानकीजी प्रकट हुई हैं स्वयं अपनी महिमा से, उन्हें प्रकट करने के लिए किसी भिन्न उपकरण की अपेक्षा नहीं है। अर्थात शक्ति शक्तिमान से अभिन्न, अद्वैत तत्व है, अतएव अनुपमेय है, यही गूढ़ दार्शनिक तत्व भक्त शिरोमणि कवि ने इस अभूतोपमालंकार के द्वारा बड़ी सुंदरता से व्यक्त किया है।)

चौपाई :

*** चलीं संग लै सखीं सयानी। गावत गीत मनोहर बानी॥ सोह नवल तनु सुंदर सारी। जगत जननि अतुलित छबि भारी॥1॥

भावार्थ:

सयानी सखियाँ सीताजी को साथ लेकर मनोहर वाणी से गीत गाती हुई चलीं। सीताजी के नवल शरीर पर सुंदर साड़ी सुशोभित है। जगज्जननी की महान छबि अतुलनीय है॥1॥

*** भूषन सकल सुदेस सुहाए। अंग अंग रचि सखिन्ह बनाए॥ रंगभूमि जब सिय पगु धारी। देखि रूप मोहे नर नारी॥2॥

भावार्थ:

सब आभूषण अपनी-अपनी जगह पर शोभित हैं, जिन्हें सखियों ने अंग-अंग में भलीभाँति सजाकर पहनाया है। जब सीताजी ने रंगभूमि में पैर रखा, तब उनका (दिव्य) रूप देखकर स्त्री, पुरुष सभी मोहित हो गए॥2॥

***हरषि सुरन्ह दुंदुभीं बजाईं। बरषि प्रसून अपछरा गाईं॥ पानि सरोज सोह जयमाला। अवचट चितए सकल भुआला॥3॥

भावार्थ:

देवताओं ने हर्षित होकर नगाड़े बजाए और पुष्प बरसाकर अप्सराएँ गाने लगीं। सीताजी के करकमलों में जयमाला सुशोभित है। सब राजा चकित होकर अचानक उनकी ओर देखने लगे॥3॥

*** सीय चकित चित रामहि चाहा। भए मोहबस सब नरनाहा॥ मुनि समीप देखे दोउ भाई। लगे ललकि लोचन निधि पाई॥4॥

भावार्थ:

सीताजी चकित चित्त से श्री रामजी को देखने लगीं, तब सब राजा लोग मोह के वश हो गए। सीताजी ने मुनि के पास (बैठे हुए) दोनों भाइयों को देखा तो उनके नेत्र अपना खजाना पाकर ललचाकर वहीं (श्री रामजी में) जा लगे (स्थिर हो गए)॥4॥

दोहा :

*** गुरजन लाज समाजु बड़ देखि सीय सकुचानि। लागि बिलोकन सखिन्ह तन रघुबीरहि उर आनि॥248॥

भावार्थ:

परन्तु गुरुजनों की लाज से तथा बहुत बड़ेसमाज को देखकर सीताजी सकुचा गईं। वे श्री रामचन्द्रजी को हृदय में लाकर सखियों की ओर देखने लगीं॥248॥

चौपाई :

*** राम रूपु अरु सिय छबि देखें। नर नारिन्ह परिहरीं निमेषें॥ सोचहिं सकल कहत सकुचाहीं। बिधि सन बिनय करहिं मन माहीं॥1॥

भावार्थ:

श्री रामचन्द्रजी का रूप और सीताजी की छबि देखकर स्त्री-पुरुषों ने पलक मारना छोड़ दिया (सब एकटक उन्हीं को देखने लगे)। सभी अपने मन में सोचते हैं, पर कहते सकुचाते हैं। मन ही मन वे विधाता से विनय करते हैं-॥1॥

*** हरु बिधि बेगि जनक जड़ताई। मति हमारि असि देहि सुहाई॥ बिनु बिचार पनु तजि नरनाहू। सीय राम कर करै बिबाहू॥2॥

भावार्थ:

हे विधाता! जनक की मूढ़ता को शीघ्र हर लीजिए और हमारी ही ऐसी सुंदर बुद्धिउन्हें दीजिए कि जिससे बिना ही विचार किए राजा अपना प्रण छोड़कर सीताजी का विवाह रामजी से कर दें॥2॥

***जगु भल कहिहि भाव सब काहू। हठ कीन्हें अंतहुँ उर दाहू॥ एहिं लालसाँ मगन सब लोगू। बरु साँवरो जानकी जोगू॥3॥

भावार्थ:

संसार उन्हें भला कहेगा, क्योंकि यह बात सब किसी को अच्छी लगती है। हठ करने से अंत में भी हृदय जलेगा। सब लोग इसी लालसा में मग्न हो रहे हैं कि जानकीजी के योग्य वर तो यह साँवला ही है॥3॥

बंदीजनों द्वारा जनकप्रतिज्ञा की घोषणा राजाओं से धनुष न उठना, जनक की निराशाजनक वाणी

*** तब बंदीजन जनक बोलाए। बिरिदावली कहत चलि आए॥ कह नृपु जाइ कहहु पन मोरा। चले भाट हियँ हरषु न थोरा॥4॥

भावार्थ:

तब राजा जनक ने वंदीजनों (भाटों) को बुलाया। वे विरुदावली (वंश की कीर्ति) गाते हुए चले आए। राजा ने कहा- जाकर मेरा प्रण सबसे कहो। भाट चले, उनके हृदय में कम आनंद न था॥4॥

दोहा :

*** बोले बंदी बचन बर सुनहु सकल महिपाल। पन बिदेह कर कहहिं हम भुजा उठाइ बिसाल॥249॥

भावार्थ:

भाटों ने श्रेष्ठ वचन कहा- हे पृथ्वी की पालना करने वाले सब राजागण! सुनिए। हम अपनी भुजा उठाकर जनकजी का विशाल प्रण कहते हैं॥249॥

चौपाई :

*** नृप भुजबल बिधु सिवधनु राहू। गरुअ कठोर बिदित सब काहू॥ रावनु बानु महाभट भारे। देखि सरासन गवँहिं सिधारे॥1॥

भावार्थ:

राजाओं की भुजाओं का बल चन्द्रमा है, शिवजी का धनुष राहु है वह भारी है, कठोर है, यह सबको विदित है। बड़े भारी योद्धा रावण और बाणासुर भी इस धनुष को देखकर गौं से (चुपके से) चलते बने (उसे उठाना तो दूर रहा, छूने तक की हिम्मत न हुई)॥1॥

*** सोइ पुरारि कोदंडु कठोरा। राज समाज आजु जोइ तोरा॥ त्रिभुवन जय समेत बैदेही। बिनहिं बिचार बरइ हठि तेही॥2॥

भावार्थ:

उसी शिवजी के कठोर धनुष को आज इस राज समाज में जो भी तोड़ेगा, तीनों लोकों की विजय के साथ ही उसको जानकीजी बिना किसी विचार के हठपूर्वक वरण करेंगी॥2॥

*** सुनि पन सकल भूप अभिलाषे। भटमानी अतिसय मन माखे॥ परिकर बाँधि उठे अकुलाई। चले इष्ट देवन्ह सिर नाई॥3॥

भावार्थ:

प्रण सुनकर सब राजा ललचा उठे। जो वीरता के अभिमानी थे, वे मन में बहुत हीतमतमाए। कमर कसकर अकुलाकर उठे और अपने इष्टदेवों को सिर नवाकर चले॥3॥

*** तमकि ताकि तकि सिवधनु धरहीं। उठइ न कोटि भाँति बलु करहीं॥ जिन्ह के कछु बिचारु मन माहीं। चाप समीप महीप न जाहीं॥4॥

भावार्थ:

वे तमककर (बड़े ताव से) शिवजी के धनुष की ओर देखते हैं और फिर निगाह जमाकर उसे पकड़ते हैं, करोड़ों भाँति से जोर लगाते हैं, पर वह उठता ही नहीं। जिन राजाओं के मन में कुछ विवेक है, वे तो धनुष के पास ही नहीं जाते॥4॥

दोहा :

*** तमकि धरहिं धनु मूढ़ नृप उठइ न चलहिं लजाइ॥ मनहुँ पाइ भट बाहुबलु अधिकु अधिकु गरुआइ॥250॥

भावार्थ:

वे मूर्ख राजा तमककर (किटकिटाकर) धनुष को पकड़ते हैं, परन्तु जब नहीं उठता तो लजाकर चले जाते हैं, मानो वीरों की भुजाओं का बल पाकर वह धनुष अधिक-अधिक भारी होता जाता है॥250॥

चौपाई :

*** भूप सहस दस एकहि बारा। लगे उठावन टरइ न टारा॥ डगइ न संभु सरासनु कैसें। कामी बचन सती मनु जैसें॥1॥

भावार्थ:

तब दस हजार राजा एक ही बार धनुष को उठाने लगे, तो भी वह उनके टाले नहीं टलता। शिवजी का वह धनुष कैसे नहीं डिगता था, जैसे कामी पुरुष के वचनों से सती का मन (कभी) चलायमान नहीं होता॥1॥

*** सब नृप भए जोगु उपहासी। जैसें बिनु बिराग संन्यासी॥ कीरति बिजय बीरता भारी। चले चाप कर बरबस हारी॥2॥

भावार्थ:

सब राजा उपहास के योग्य हो गए, जैसे वैराग्य के बिना संन्यासी उपहास के योग्य हो जाता है। कीर्ति, विजय, बड़ी वीरता- इन सबको वे धनुष के हाथों बरबस हारकर चले गए॥2॥

*** श्रीहत भए हारि हियँ राजा। बैठे निज निज जाइ समाजा॥ नृपन्ह बिलोकि जनकु अकुलाने। बोले बचन रोष जनु साने॥3॥

भावार्थ:

राजा लोग हृदय से हारकर श्रीहीन (हतप्रभ) हो गए और अपने-अपने समाज में जा बैठे। राजाओं को (असफल) देखकर जनक अकुला उठे और ऐसे वचन बोले जो मानो क्रोध में सने हुए थे॥3॥

*** दीप दीप के भूपति नाना। आए सुनिहम जो पनु ठाना॥ देव दनुज धरि मनुजसरीरा। बिपुल बीर आए रनधीरा॥4॥

भावार्थ:

मैंने जो प्रण ठाना था, उसे सुनकर द्वीप-द्वीप के अनेकों राजा आए। देवता और दैत्य भी मनुष्य का शरीर धारण करके आए तथा और भी बहुत से रणधीर वीर आए॥4॥

दोहा :

*** कुअँरि मनोहर बिजय बड़ि कीरतिअति कमनीय। पावनिहार बिरंचि जनु रचेउ न धनु दमनीय॥251॥

भावार्थ:

परन्तु धनुष को तोड़कर मनोहर कन्या, बड़ी विजय और अत्यन्त सुंदर कीर्ति को पाने वाला मानो ब्रह्मा ने किसी को रचा ही नहीं॥251॥

चौपाई :

*** कहहु काहि यहु लाभु न भावा। काहुँ न संकर चाप चढ़ावा॥ रहउ चढ़ाउब तोरब भाई। तिलु भरि भूमि न सके छड़ाई॥1॥

भावार्थ:

कहिए, यह लाभ किसको अच्छा नहीं लगता, परन्तु किसी ने भी शंकरजी का धनुष नहीं चढ़ाया। अरे भाई! चढ़ाना और तोड़ना तो दूर रहा, कोई तिल भर भूमि भी छुड़ा न सका॥1॥

*** अब जनि कोउ भाखे भट मानी। बीर बिहीन मही मैं जानी॥ तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न बिधि बैदेहि बिबाहू॥2॥

भावार्थ:

अब कोई वीरता का अभिमानी नाराज न हो। मैंने जान लिया, पृथ्वी वीरों से खाली हो गई। अब आशा छोड़कर अपने-अपने घर जाओ, ब्रह्मा ने सीता का विवाह लिखा ही नहीं॥2॥

*** सुकृतु जाइ जौं पनु परिहरऊँ। कुअँरि कुआँरि रहउ का करऊँ॥ जौंजनतेउँ बिनु भट भुबि भाई। तौ पनु करि होतेउँ न हँसाई॥3॥

भावार्थ:

यदि प्रण छोड़ता हूँ, तो पुण्य जाता है, इसलिए क्या करूँ, कन्या कुँआरी ही रहे। यदि मैं जानता कि पृथ्वी वीरों से शून्य है, तो प्रण करके उपहास का पात्र न बनता॥3॥

*** जनक बचन सुनि सब नर नारी। देखि जानकिहि भए दुखारी॥ माखे लखनु कुटिल भइँ भौंहें। रदपट फरकत नयन रिसौंहें॥4॥

भावार्थ:

जनक के वचन सुनकर सभी स्त्री-पुरुष जानकीजी की ओर देखकर दुःखी हुए परन्तु लक्ष्मणजी तमतमा उठे, उनकी भौंहें टेढ़ी हो गईं, होठ फड़कने लगे और नेत्र क्रोध से लाल हो गए॥4॥

दोहा :

*** कहि न सकत रघुबीर डर लगे बचन जनु बान। नाइ राम पद कमल सिरु बोले गिरा प्रमान॥252॥

भावार्थ:

श्री रघुवीरजी के डर से कुछ कह तो सकते नहीं, पर जनक के वचन उन्हें बाण से लगे। (जब न रह सके तब) श्री रामचन्द्रजी के चरण कमलों में सिर नवाकर वे यथार्थ वचन बोले-॥252॥